जुही की कली - सुर्यकांत त्रिपाठी निराला

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहागभरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न-
अमल-कोमल-तनु-तरुणी-जुही की कली,
दृग बन्द किये, शिथिल-पत्रांक में।
वासन्ती निशा थी;
विरह-विधुर-प्रिया-संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल।
आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,
आई याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात,
फिर क्या ? पवन
उपवन-सर-सरित गहन-गिरि-कानन
कुञ्ज-लता-पुञ्जों को पारकर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि
कली-खिली-साथ।
सोती थी,
जाने कहो कैसे प्रिय-आगमन वह ?
नायक ने चूमे कपोल,
डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल।
इस पर भी जागी नहीं,
चूक-क्षमा माँगी नहीं,
निद्रालस वंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही-
किम्वा मतवाली थी यौवन की मदिरा पिये
कौन कहे ?
निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की,
कि झोंकों की झड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल;
चौंक पड़ी युवती-
चकित चितवन निज चारों ओर पेर,
हेर प्यारे को सेज पास,
नम्रमुख हँसी, खिली
खेल रंग प्यारे संग।